# फिलिप्पियों

(Philippians)

१ **सभी** देखभाल करने वाले और सहकर्मियों सहित पौलुस और तिमोथी, जो यीशु मसीह के सेवक हैं, उन सभी
२ की ओर से मसीह यीशु में पवित्र लोगों के नाम जो फिलिप्पी में रहते हैं **हमारे** स्वर्गिक पिता और स्वामी यीशु
३ मसीह की ओर से तुम्हें बड़ी कृपा और शान्ति मिले। **तुम्हारी** याद आने पर मैं अपने स्वर्गिक पिता को धन्यवाद
४,५ देता हूँ। **तुम्हारे** लिए मैं हमेशा आनन्द के साथ बिनती करता हूँ। **अब** तक शुभसंदेश में तुम्हारी सहभगिता
६ आरम्भ से है। **इस** बात की निश्चयता से कि जिन्होंने तुम लोगों के बीच एक अच्छा काम शुरू किया है, वह
७ उसे यीशु मसीह के दिन तक पूरा करते रहेंगे। **क्योंकि** तुम मेरे दिल में बस गए हो, मेरे लिए यह भला है,
कि मैं तुम्हारे बारे में ऐसा सोचूँ, कि मेरी जंजीरों और शुभसंदेश की पुष्टि के बचाव पक्ष में यहोवा परमेश्वर
८ की कृपा के द्वारा तुम सब मेरे साथ सहभागी हो सको। **यीशु** मसीह के स्नेह के साथ मैं तुम्हें किस तरह चाहता

---

१:१ ***"तिमोथी"***- प्रेरित ११:१ इस पत्र को लिखने में तिमोथी ने सहायता नहीं की थी किन्तु शायद पौलुस के कहे जाने पर लिखा। रोमि १६:२२ से तुलना करें।

***"सेवक"***- रोमि १:१

***"पवित्र लोग"*** - रोमि १:७

***"फिलिप्पी"*** - प्रेरित १६:१२-४०।

***"देखभाल करने वाले"***-प्रेरित २०:३८; १ तिमोथी ३:३; १ पत ५:२।

१:२,३ रोमि १:७,८

१:४ ***"प्रत्येक प्रार्थना में"*** -रोमि १:१०।

***"आनन्द"***-प्रायः मण्डलियाँ पौलुस के दुख का कारण थीं। १ कुरि या गलातियों में उसके आनन्द के विषय कुछ नहीं है। उन कलीसियाओं की तुलना में फिलिप्पी कलीसिया भिन्न थी। फिलिप्पियों में 'आनन्द' एक विशेष विषय था - पौलुस के किसी और पत्र की तुलना में यह शब्द इसमें सबसे अधिक है-१:१८,२५२६; २:२,१७,१८,२८;३:१; ४:१,४,१०।

१:५ यहाँ पौलुस के धन्यवाद और आनन्द का कारण है - जिस सहभागिता और सहायता का उन्होंने अनुभव किया उसमें कोई रूकावट नहीं आयी- ४:१४-१६। मसीह के सुसमाचार ने उन्हें हृदय और कार्यों में एक किया।

***"शुभसंदेश"***-१ कुरि. १५:१-८ में पौलुस शुभसंदेश की परिभाषा देता है। रोमियों का पूरा पत्र इसका पूरी तरह से खुलासा करता है।

१:६ ***"निश्चयता"***-२ कुरि १:१४,१५; गल ५:१०; १ थिस्सु १:४,५; इब्रा ६:६:१०।

***"जिसने शुरू किया है"***-परमेश्वर। हम इस पद से नीचे लिखी बातें सीखते हैः सच्चे विश्वासी परमेश्वर का कार्य हैं - इफि २:१०; २कुरि ५:१७। वही उनके जीवन में मुक्ति का कार्य आरम्भ करते हैं। याकूब १:१८; यूहन्ना ३:५-८; ६:३७,४४। वही कार्य को जारी रखते हैं - २:१३; १कुरि १२:६; कुलु १:२६; इब्रा १३:२१। यह एक ***"अच्छा"*** कार्य है। यह भीतरी कार्य है (तुम में), यह ऐसा कार्य है जो आत्मा, मन और भीतर होता है-२:१३; गल.२:२०; इफि ३:१६,२० ।इस कार्य को परमेश्वर पूरा करते हैं - रोमि ८:२६,३०। किसी कारणवश लोग कार्य आरम्भ करके यूं ही छोड़ देते हैं। परमेश्वर ऐसा नहीं करते। जब वह किसी के जीवन में मुक्ति के कार्य को शुरू करते हैं, वह उसे समाप्त भी करना चाहते हैं और करते भी हैं। पौलुस इस बारे में आश्वस्त था, हमें भी होना चाहिए। २:१२,१३ में हम देखते हैं, कि इसमें हमको परमेश्वर के साथ सहयोग करना चाहिए। नोट्स देखें।

***"यीशु मसीह का दिन"***- यीशु का दोबारा आना।

१:७ ***"मेरी आत्मा में"*** या ***"मेरे हृदय में"*** - २ कुरि. ३:२, ६:११; ७:३।

***"जंजीरों"*** - पद १३; इफि ४:१; ६:२०।

***"बचाव में"*** परमेश्वर के सेवकों को चाहिए कि शुभ संदेश को आक्रमण, अरोपों, गलतफहमी आदि से रक्षा करें।

***"दया"***-यूहन्ना १:१४ और रोमि १:७ में टिप्पणी देखें। परमेश्वर की दया ने उन्हें मसीह में विश्वासी बनाया और मसीह की देह, सच्ची कलीसिया में शामिल किया।

१:८ मसीह पौलुस में था और पौलुस का प्रेम उसके द्वारा मसीह का प्रेम था।-गलातियों २:२०।जब तक हम मसीह के समान प्रेम करना न सीखें, हम उनके समान प्रेम नहीं कर पाएंगे- इफि. ३:१७-१६। जो विश्वासी मसीह की आज्ञा में जीते हैं, उनके लिए प्रेम परमेश्वर की आत्मा का परिणाम है-गल ५:२२।

***"चाहता हूं"*** यहाँ वह उस हृदय के विषय कहता है, जो प्रत्येक मसीही कार्यकर्ता के पास होना चाहिए। ४:१; रोमि १:१; २ कुरि २:४; गलातियों ४:१६,२०; १ थिस्सु २:१७; २ तिमोथी १:४।

९ हूँ, सृष्टि के स्वामी इस सच्चाई के गवाह हैं । **मैं** यह प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारा प्रेम, ज्ञान और समझदारी
१० ज़्यादा उमड़ सके । **तुम** मसीह के दूसरे आगमन के दिन तक ईमानदार रहो और ठोकर का कारण न बनो
११ तथा तुम उन बातों को सही ठहरा सको, जो सर्वोत्तम हैं । **मसीह** यीशु के द्वारा उत्पन्न होनेवाले धार्मिकता के
१२ फल से लद जाओ, जो यहोवा की स्तुति और प्रशंसा के लिए होते हैं । **भाइयो-बहनो**, मैं चाहता हूँ कि तुम
१३ समझो कि जो कुछ मेरे साथ घटा, उन सबसे शुभसंदेश की प्रगति हुयी है । **इसके** फलस्वरूप राजमहल के सुरक्षा
१४ कर्मियों के बीच और दूसरे स्थानों में यह प्रगट हुआ है कि मैं यीशु मसीह के कारण कैदी हूँ । **मेरी** कैद के
१५ कारण साहस पाकर बड़े बल और बिना डर से अनेक मसीही भाई बहन संदेश देते हैं । **कुछ** लोग ईर्ष्या से
१६ प्रेरित होकर संदेश देते हैं, किन्तु कुछ अच्छे मन से । **जो** लोग ईर्ष्या से करते हैं, उनके मन स्वार्थ से भरे हैं ।
१७ वे ईमानदारी से ऐसा नहीं करते हैं । वे मेरे दुखों को और अधिक बढ़ाना चाहते हैं । **परंतु** अच्छे मन से
१८ करनेवाले ऐसा प्रेम से करते हैं, यह जानकर कि मैं शुभसंदेश के पक्ष में हूँ । **तो** इसका परिणाम क्या है ?
केवल यह कि हर तरह से - चाहे बहाने से या सच्चाई से, मसीह के विषय में बताया जाता है । मैं उसी में

---

१:९-११ इफिसियों के लिए पौलुस की प्रार्थनाओं से तुलना करें - १:१७-१९; ३:१६-१९ और कुलु १:९-१२ । पौलुस की बिनतियां परमेश्वर के आत्मा द्वारा प्रेरित हैं और हमारी शिक्षा के लिए हैं । हम इनसे सीख सकते हैं कि परमेश्वर हमारे भीतर और हमारे लिए क्या करना चाहते हैं । हम यह भी सीख सकते हैं कि दूसरों के लिए प्रार्थना कैसे करें ।

१:९ ***"तुम्हारा प्रेम"***- यहाँ परमेश्वर का इशारा संगी विश्वासियों और मानवजाति के लिये प्रेम की तरफ है । वह चाहते हैं कि सही तरीके से उनका प्रेम बढ़ता जाए । उन्हें और अधिक यह पहचानना है कि सच्चा प्यार क्या है और उसे कैसे दिखाया जाए । इस प्रेम को अन्धा न होकर मसीह के ज्ञान और स्नेह से भरपूर होना है-इफि. ३:१७-१९ ।

१:१० ***"उन बातों को सहमति दे सको जो सर्वोत्तम हैं"***- विश्वासी होने के नाते एक मण्डली में उनके जीवन के बारे में वह बताता है। इन अच्छी बातों के बारे में वह २:१-५; १४,१५; ४:८,९ में कुछ कहता है ।

१:११ ***"फलों"*** - मत्ती ७:१७; रोमि ६:२२; ७:४; गल ५:२२; इफि. ५:९ ।

***"धार्मिकता के"***- इब्रा १२:११; याकूब ३:१;८- वह बदलाव जो स्वर्गिक पिता के साथ सम्बंध के फलस्वरूप आता है ।

***"यीशु के द्वारा"*** - केवल उन्हीं के द्वारा परमेश्वर को कुछ स्वीकार योग्य होगा (यूहन्ना १::४,५)

***"यहोवा की स्तुति और प्रशंसा के लिये"*** -इफि. १:६,१२,१४ ।

१:१२ उसे गिरफ्तार करके जेल में डाला गया । इससे वह निराश होकर शिकायती नहीं हो गया । उत्पत्ति ५०:२० से तुलना करें । रोमि ८:२८ में उसने वह विश्वास किया जो कुछ उसने रोमि ८:२८ में लिखा था ।

***"प्रगति"***-जिन बातों को लोग प्रायः सुसमाचार के फैलाव के लिये एक रूकावट समझ बैठते हैं वही बातें इसके प्रसार में मददगार साबित हो सकती हैं । दिखनेवाली दुर्घटनाएँ आशीष बन सकती है । एक विश्वासी के जीवन की सभी घटनाएँ परमेश्वर के हाथों में, किसी अच्छे लक्ष्य को पूरा कर सकती है ।

१:१३ जो पहरेदार पौलुस की पहरेदारी कर रहे थे, उसने उन्हें शुभसंदेश सुनाया । ये सिपाही रोमी राजा या गर्वनर की सेवा में हो सकते हैं (हमें यह नहीं मालूम कि यह चिट्ठी लिखते समय वह जेल में किस जगह था ।) इसलिए शुभसंदेश उन सभी स्थानों में फैलता गया जहाँ पहले नहीं पहुँचा था । २ तिमोथी २:९ से तुलना करें ।

***"मैं यीशु मसीह के कारण कैदी हूँ"***-सभी लोग यह जान गए थे कि पौलुस अपराधी नहीं था । उसने कानून नहीं तोड़ा था, लेकिन उसका जुर्म दूसरों को शुभसंदेश सुनाना उसका जुर्म था ।

१:१४ जिन अधिकारियों और पहरेदारों ने उसे बन्दी बनाकर रखा था, उन्हें शुभसंदेश सुनाना साहस की बात थी । उसके साहस के इस नमूने से उनका साहस और बढ़ गया । इससे भी शुभसंदेश ज़ोर शोर से फैलता गया ।

१:१५-१७ उस समय जो लोग संदेश दिया करते थे, सभी अच्छे मन से नहीं करते थे । कुछ लोग पौलुस की महानता और सफलता से जल रहे थे और उसे अपना प्रतिद्वन्दी (दुश्मन) समझ रहे थे । उनकी सेवकाई स्वार्थ से प्रेरित थी । आज भी ऐसा है । कुछ सेवक मशहूर होना चाहते हैं । अपनी सफलता ही चाहते हैं । दूसरे सेवकों को नीचा करने के साथ अगर उनके लिए समस्या पैदा कर सकें तो वह भी करने में कसर नहीं रखते । लेकिन जैसा पहले था आज भी है ।वह यह कि कुछ मसीह के लिए और लोगों के लिए प्यार की वजह से शुभसंदेश देते है ।

१:१८ पौलुस ने कभी भी किसी को अपना प्रतिद्वन्दी नहीं समझा । वह चाहता था कि मसीह और उनका संदेश सब जगह सुनाया जाए । जो लोग उसे पसन्द नहीं करते थे, उसके लिए परेशानी खड़ी करते थे, लेकिन शुभसंदेश देते थे, वह उनके लिए खुश था । वह खुद मशहूर नहीं होना चाहता था, लेकिन यीशु को ऊँचा उठाना चाहता था । यहाँ उन सब के लिए एक बड़ी सीख है । हालाँकि पौलुस उन लोगों की तरफ इशारा कर रहा था, जो मसीह के सम्बन्ध में वचन देते थे; न कि वे जिनके बारे में वह चेतावनी देता था । (२ कुरि. ११:१३-१५; गल.१:७,८ आदि) ।

१९ आनन्दित हूँ और रहूँगा भी । **क्योंकि** मैं जानता हूँ कि मुझे तुम्हारी प्रार्थना और यीशु मसीह की आत्मा से
२० आज़ादी मिलेगी । **हमेशा** की तरह आज भी मैं पूरी निश्चयता के साथ कह सकता हूँ, कि चाहे मैं मरूँ या जिऊँ,
२१ मरे जीवन से यीशु को आदर सम्मान मिलेगा । **क्योंकि** मेरे लिए जीवित रहना मसीह और मर जाना फायदेमंद
२२ है । **लेकिन** यदि मैं देह में जीता रहूँ तो इसका अर्थ मेरी मेहनत का फल होगा । लेकिन मुझे मालूम नहीं कि
२३ मैं क्या चुनूँ । **मैं** इन दोनों के बीच फँसा हुआ हूँ, मेरे अन्दर यह इच्छा है कि मसीह के पास रहने के लिए
२४ यहाँ से चला जाऊँ, जो कि कहीं अधिक अच्छा है। **परन्तु** मेरा देह में जीवित रहना तुम्हारे लिए ज़्यादा फ़ायदेमन्द
२५ है । **इन** बातों से कायल होकर मैं जानता हूँ, कि मैं तुम्हारी तरक्की और विश्वास में आनन्द के लिए तुम्हारे
२६ साथ बना रहूँ । **ताकि** मेरे लिए तुम्हारा आनन्द मनाना, मेरे तुम्हारे पास आने से बहुत अधिक हो सके ।
२७ **ताकि** चाहे मैं आऊँ और देखूँ या मौजूद न भी रहूँ, केवल तुम्हारा चाल-चलन मसीह के शुभसंदेश के योग्य
हो । यह भी सुन सकूँ कि तुम एक आत्मा में स्थिर होकर और एक मन से मिलकर शुभसंदेश के विश्वास

---

१:१९ शायद पौलुस उसके विरोध और खिलाफत से मुक्ति की बात कर रहा है और उसी प्रकार मौत से आज़ादी के विषय भी कह सकते है - पद २५,२६ ।

***"तुम्हारी प्रार्थना"***-फिलेमोन २२; रोमि १५:३०-३२ ।

***"यीशु मसीह की आत्मा"*** - रोमि ८:९ और नोट देखें ।

१:२० वह निश्चित था कि किसी भी समय या हालात में वह मसीह के लिए साहस से बोलने में हिचकिचाएगा नहीं । इफि ६:१९,२० से तुलना करें ।

***"मसीह की बड़ाई"*** - जब से पौलुस ने गलतियों १:१६ में यह कहा, तब से यह पौलुस के जीवन और सेवकाई का परिणाम रहा है । अब भी उसका यही उद्देश्य था और अपेक्षा भी। जीवन या मृत्यु किसी भी परिस्थिति में उसका इससे बड़ा कोई और उद्देश्य नहीं हो सकता ।

***"जीवित रहूँ"***-पौलुस के हर दिन के जीवन, व्यवहार मुँह के शब्दों से मसीह को सम्मान मिल रहा था, सिर्फ उसके विचारों और इच्छाओं से नहीं ।

१:२१ ***"जीवित रहना मसीह"*** - गल २:२० । पौलुस उसमें मसीह के जीवन द्वारा जीवन जीता था अपने स्वयं की ताकत में नहीं, । वह अपनी नहीं मसीह की ताकत में सेवा करता था । वह यीशु को इज़्जत देना चाहता था, खुद को नहीं ।

***"मर जाना लाभकारी"***- पौलुस को मौत का डर नहीं था (इब्रा २:१५ देखें) । वह भजन ११६:१५ की सच्चाई जानता था । वह जानता था कि चाहे वह जिए या मरे मसीह उसमें सम्मान पाएंगे -पद २०। लेकिन जैसे पद २३ दिखाता है, मसीह के पास जाने की भी खुशी उसके मिलनेवाले पूरे लाभ का एक भाग थी । क्या प्रत्येक व्यक्ति यह कह सकता है कि मरना उसके लिए फायदेमन्द है । नहीं, केवल वे ही कह सकते हैं जो मसीह के लिए जीते है । जो लोग अपने लिए जीवित हैं उनके लिए मरना लाभकारी नहीं हो सकता । जो लोग मसीह को नहीं जानते, उसके लिए मौत एक दुश्मन है ।

१:२२-२४ ***"मेरी मेहनत का फल"***-रोमि १:१३, ७:४ उसके भरोसे पर ध्यान दें, कि मसीह के लिए उसका परिश्रम सफल होगा । यह इस समझ से पैदा हुआ, कि यह मसीह ही थे जो उसमें काम कर रहे थे । कुलु १:२९ ।

***"क्या चुनूँ"***- मरना और जीना दोनों ही को वह स्वीकार कर चुका था । वह यह फैसला नहीं कर पा रहा था कि चुनाव किस का करे ।

***"मसीह के साथ"*** - २ कुरि ५:८; लूका २३:४३ । एक विश्वासी मरते ही मसीह यीशु की मौजूदगी में पहुँच जाता है ।

१:२५ ***"बना रहूँ"*** जहाँ तक उसकी खुद की बात थी, वह मर कर मसीह के पास पहुँचने की इच्छा रखता था। इसके बावजूद यह उसके लिए खास बात नहीं थी, कि वह क्या चाहता था । उसके काम और प्रार्थनाएँ दूसरों की ज़रूरत से प्रेरित थे । तुलना करें । १ कुरि. ९:१९-२३; १०:२४,३३ । पौलुस वह कैसे जान सकता था, कि उस समय वह नहीं मरेगा? परमेश्वर ने उसे आश्वासन दिया कि उसकी आज़ादी की बिनती का जवाब वह देंगे -पद १९;२:२४।

***"तरक्की और विश्वास में आनंद"***-इफि ४:१२,१३।विश्वास में उन्नित के साथ-साथ खुशी बनी रहेगी । प्रत्येक विश्वासी को ज्यादा यह देखना चाहिए कि दुनिया में किसी और बात की तरक्की से मसीही विश्वास में तरक्की करें ।

१:२७ ***"योग्य"***-इफि ४:१; कुलु १:१०; १थिस्सु २:१२ ।

***"स्थिर होकर"*** - इफि ६:११,१४ ।

***"एक आत्मा ...एक मन"***-२:२ इफि ४:२; १कुरि. १:१०; रोमि १२:१६ ।

***"कोशिश"*** -पद ७; यहूदा १ । जब शुभसंदेश पर किसी तरह का हमला किया जाता है, तब यीशु के लोगों को झूठी

२८ के लिए भरपूर कोशिश करते हो । **तुम** अपना विरोध करनेवालों से डरते नहीं हो । यह उनके विनाश का उनके
२९ लिए साफ निशान है, लेकिन तुम्हारे लिए उस मुक्ति का जो सृष्टि के स्वामी का है । **यह** मसीह के बदले तुम्हें
३० दिया गया, कि तुम न केवल उन पर ईमान लाओ, लेकिन उनकी खातिर कष्ट भी उठाओ । **तुम** खुद को इसी
**२** कश्मकश में पाते हो, जो तुमने मुझमें देखा और सुनते हो, कि मुझमें है । **इसलिए** यदि मसीह में हिम्मत,
२ प्यार की तसल्ली, पवित्र आत्मा की सहभागिता, प्रेमयुक्त कोमल भावना और दया है, **तो** एक दूसरे के लिए
३ प्रेम में एक होकर एक ही लक्ष्य रखकर एकता की भावनाओं को रखो । **अपने** नाम या स्वार्थ की भावना से
४ कुछ न किया जाए, लेकिन मन की दीनता से हर एक दूसरों को अपने से अच्छा समझो । **हर** एक सिर्फ
५ अपने फायदे की बातों पर ध्यान न दे, लेकिन दूसरों के फायदे की भी । **तुम्हारे** भीतर वही मन हो, जो मसीह
६ यीशु में था । **हालाँकि** आरम्भ ही से यीशु के पास यहोवा परमेश्वर का स्वभाव था, फिर भी यहोवा परमेश्वर

---

शिक्षा और गलती के साथ कोई समझौता नहीं करना चाहिए । शुभसंदेश की सच्चाई के लिए संघर्ष करना अच्छी बात है और इसे बुद्धिमानी, आत्मिक बल और उस योग्यता और प्यार से करना चाहिए, जो स्वर्गिक पिता हमें देते है ।

१:२८ ***"डरते नहीं"***- पद १४,२०; मत्ती १०:२८; इब्रा १३:६

***"विरोध करने वालों"*** -पद ३०

***"निशान"*** मसीह में उनकी हिम्मत इस बात का निशान थी, कि परमेश्वर उनके साथ थे । प्रेरित ४:१३;२थिस्सु १:४-७ । उनके विरोधी यह जान सकते थे कि परमेश्वर मसीह के विश्वासियों के साथ थे, उनके स्वयं के साथ नहीं जो विश्वासियों का विरोध करते थे।

१:२९ ***"दिया गया ... इमान लाओ"***- विश्वास परमेश्वर का एक दान है -उत्पत्ति २:८ इस पृथ्वी पर यह जानना एक बड़ी बात है। देखें ३:१०, प्रेरितों के काम ५:४१; रोमि ५:३; २कुरि १:५; १पत ५:१३,,१४,१६।

***"दु:ख उठाना"***-एक आशीष है । क्या मसीह के लिए दु:ख उठाना एक इज्ज़त की बात नहीं है । प्रेम का उत्तर होगा ***"हाँ"*** यह इस बात की कोशिश नहीं करता कि किसी तरह से यीशु के कारण होनेवाली मुश्किल, समस्या, से बचे ।

१:३० ***"मुझमें"***-पौलुस की कुछ परेशनियों को जानने के लिए प्रेरित १६:१९-४० देखे । उस जगह में शुभसंदेश के बहुत से दुश्मन थे और उनके द्वारा विरोध भी हो रहा था ।

२:१,२ यीशु के लोगों में आपसी मनमुटाव के कारण पौलुस को दुख था-१:२७,४:२ यीशु के मानने वाले होने के फलस्वरूप उनके पास जो कुछ था, उस आधार पर वह उनसे अनुरोध करता है ।

***"यदि"***-वह यह संदेह नहीं कर रहा है कि उनमें वे बातें हैं जो वह उन्हें तब बता रहा था । तात्पर्य यह है कि ***"चूकि २:३ तुममें यह बातें है"*** यूहन्ना १७:२०-२३, रोमि ६:५; इफि ४:१५,१६ ।

***"शान्ति"*** - २ कुरि. १:३,५,७ ।

***"सहभगिता"*** - २ कुरि. १३:१४ ।

***"कोमल भावना और दया"***-ये गुण हर एक विश्वासी में दूसरे लोगों के लिए होने चाहिए ।

२:३ ***"भावना"***-१:१७; यर्मि ४५:५; १ कुरि. १३:५; गल. ५:२०

***"दूसरों को अपने से अच्छा समझो"***-रोमि १२:१०,१६, गल.५:२६; १पत ५:५,६ । पौलुस में इसका नमूना देखें - इफि ३:८; १ तिमो १:१५ ।

२:४ रोमि १४:१९; ५:२१; १ कुरि. १०:२४

२:५-११ दूसरों के लिए नम्रता और प्यार का सबसे बड़े नमूने को पौलुस उनके सामने रखता है । क्या यह हो सकता है कि जिस तरह यीशु का रवैया और कार्य था हमारा भी हो ? हाँ, यह संभव है । इसीलिए तो पौलुस इसके विषय कहता है, नहीं तो ऐसा नहीं कहा होता पद ५, १कुरि २:१६; रोमि ८:५ भी देखें । यीशु अपने लोगो के भीतर हैं और जब वह उनके हृदय (इफि ३:१७) के मालिक हैं, वह उनके मनों को ऐसे विचार और रवैये से भर सकते हैं, जिसकी उन्हें ज़रूरत है । जब ऐसा होता है झगड़े, स्वार्थ, धोखा और क्रोध समाप्त हो जाता है ।

न्यू टैस्टामैन्ट जिन बातों को सिखाता है, उसका निचोड़ पौलुस इन पदों में देता है । यहाँ वह रोज़मर्रा की जिन्दगी की बात कर रहा है । वह चाहता है कि लोग इन बातों को अमल में लाएं । स्वर्गिक पिता के घर और उसकी शान शौकत को छोड़कर..इस ज़मीन पर आए और सेवा का जीवन बिताया । सभी लोगों को चाहिए कि दुनिया की झूठी शान शौकत और धन दौलत से नफरत करें और परमेश्वर और लोगों की सेवा दीनता से करें।

२:६ ***"परमेश्वर के साथ समानता"***-यहाँ यूनानी में एक ही मतलब संभव है: मसीह का स्वभाव था जो परमेश्वर का है ।

७ के साथ समानता को ऐसी कीमती बात नहीं समझी, जिसे मजबूती से पकड़कर रखा जाए । **किन्तु** यीशु ने
अपनी सारी महानता को अलग रखकर दूसरे मनुष्यों की तरह एक मनुष्य बनकर एक बन्धुआ मज़दूर का स्थान
८ ले लिया । **पूरी** तरह से एक मनुष्य के रूप में आकर, उन्होंने अपने आप को यहाँ तक दीन किया, कि मरने
९ के लिए तैयार हो गए, यहाँ तक कि क्रूस की मौत भी सह ली । **इसलिए** यहोवा परमेश्वर ने यीशु को बहुत ऊँचा

---

बाईबल में दूसरे स्थानों पर यीशु को परमेश्वर कहा गया है । यशा. ९:६; यूहन्ना १:१;२०:२८,२९; प्रेरित २०:२८, रोमि ९:५, तीतुस २:१३; इब्रा १:८; १ यूहन्ना ५:२० । इसके अलावा और स्थान भी है, जहाँ मसीह को परमेश्वर कहा गया है।देखें मत्ती १:२३; २:११; ३:१७; १०:३७; ११:२७; १२:८; १४:२३;१८:२०; २२:४१-४५; २६:१७,१६,२०; यूहन्ना ५:१७-२६; ८:१९; ९:३८;१०:३०-३३; ११:२५; १४:७,१०,२,३; १७:१-५; प्रेरित ३:१४,१५; रोमि. १:७; ८:६,१०; १कुरि ८:६; २ कुरि ४:४; प्रेरित १३:१४; इफि. ३:१७-१९; कुलु १:१५;२:६; १थिस्स.१:१; १ तिमोथी १:१; ३:१६; इब्रा १:३,१०,१२; १ पत ३:१५; १ यूहन्ना १:३; २:२२; प्रकाशितवाक्य १:४,५,८;(२२:१२,१३ के साथ)१:१७;५:८, १३:१४;१९:१६;२१:६। दूसरे पद यह दिखाते हैं कि यहोवा देह में यीशु है (ओल्ड टैस्टामैन्ट में परमेश्वर का नाम) पद १०,११ और लूका २:११ में दूसरी आयतें देखें ।

***"परमेश्वर के साथ समानता"***- यहाँ ***"लूटना"*** यूनानी शब्द ***"कब्ज़ा करना"*** या ***"बल प्रयोग कर ले जाने"*** की तरफ इशारा है । यह किसी वस्तु को वश में करने को दिखाता है । शब्दों से शायद ऐसा लगता हो, लेकिन इसका मतलब कुछ ऐसा होगा :

स्वभाव और गुणों में परमेश्वर पिता, परमेश्वर पुत्र और परमेश्वर पवित्र आत्मा समान हैं । यह कुछ ऐसा है जिसे इनमें से कोई ज़बरदस्ती ले सकता है, न छोड़ सकता है । इसलिए इन अर्थों में यीशु का अपने आप को परमेश्वर के समान समझना डाका डालना या लूटना नहीं है । त्रिएकत्व के तीन सदस्य जहाँ तक पद का सवाल है, समान नहीं है । पिता का स्थान सबसे ऊपर है । यूहन्ना ५:१९-२३; १४:२८; १कुरि १५:२७,२८ देखें। परमेश्वर पुत्र यीशु ने यह नहीं चाहा कि परमेश्वर पिता की समानता पर कब्ज़ा करें । सच्चाई इसके विरोध में थी । वह खुश थे कि पिता, पिता रहें और बेटा पिता की मानता रहे - पद ८; यूहन्ना ४:३४; ५:३०; ६:३८; ८:२९; ९:४; १४:३१,१५:१०; १७:४ । इस पृथ्वी पर पुत्र के आने से पहले पिता और पुत्र में जो फर्क था, वह साफ-साफ ऊपरी पद में दिखता है ।

२:७ ***"अपनी सारी महानता को अलग रखकर"***-यहाँ यूनानी में अलग-अलग अनुवाद किया गया है । उदाहरण के लिए ***"खाली कर दिया"*** या ***"शून्य कर दिया"***, लेकिन इसका सही मतलब लगाना जरूरी है । यीशु ने अपने आप को ईश्वरत्व से खाली नहीं किया था-यह हो ही नहीं सकता था । इसी ज़मीन पर के जीवन में वह परमेश्वर बना रहे । उन्होंने अपने आप को मात्र उस 'महिमा' से रिक्त कर दिया, जो पिता के साथ उनकी थी (यूहन्ना १७:५) उन्होंने परमेश्वर के बेटे होने के नाते उसका जो हक था उसे छोड़ दिया था । उन्होंने अपने आप को स्वर्गिक आवास और इसके साथ जो कुछ था, उसे छोड़ दिया ।२ कुरि ८:९ उन्होंने अपने आपको ऐसी जगह पर रख दिया था, जहाँ वह लोगों की निगाह में किसी खास इज्ज़त की चाह नहीं रख रहे थे । वे जिन्होने सब को बनाया, बेइज्ज़त किए जाने और लज्जित किये जाने के लिए तैयार हो गए । - यूहन्ना १:१०,११; यशा ५३:३; मत्ती ८:२०; १२:२४; मरकुस ६:३; यूहन्ना १८:३० ।

***"अपनी सारी महानता को अलग रखकर"***-यह अधिकार और शक्ति के ऊँचे स्थान से एक कदम नीचे मनुष्यों के बीच आने को सही-सही दिखाता है ।

***"बंधुआ मजदूर"*** -रोमि १५:८; यूहन्ना १३:३-५; लूका २२:२७; मत्ती २०:२८।

***"की तरह"*** -यूहन्ना १:१४; रोमि ८:३; इब्रा २:१४ । वास्तविक मानवीय स्वभाव में यीशु परमेश्वर और मनुष्य दोनों हैं । यीशु परमेश्वर होने के साथ-साथ वास्तविक मानवीय स्वभाव के थे ।

२:८ ***"रूप"***-बाहर से तो यीशु दूसरे मनुष्यों की तरह सिर्फ एक इन्सान ही दिखते थे । उनका ईश्वरीय स्वभाव और वह महानता जो इस संसार में आने से पहले थी, लोगों की निगाहों से छिपी हुयी थी ।

***"अपने आपको.....दीन किया"*** - उनके जीवन भर यह सच था (मत्ती ११:२९), लेकिन उनकी दीनता साफ-साफ तब दिखी जब वह मरने पर थे - यशा ५३:७,८; १ पत २:२३,२४ । परमेश्वर के बेटे के रूप में यीशु ने अपने अधिकारों पर ज़ोर नहीं दिया । उन लोगों का विरोध नहीं किया जिन्होंने उन पर झूठे आरोप लगाए, बेइज्ज़त किया और मार डाला ।

***"तैयार"***-इसका मतलब है पिता के प्रति आज्ञाकारी होना ।

मत्ती२६:३९; यूहन्ना १८:११; रोमि५:१९; इब्रा १०:७; यूहन्ना १०:१७,१८ ।

***"क्रूस"***-पौलुस कहता है, यहाँ तक कि क्रूस की मौत । क्रूस पर मौत की सजा रोमियों का अपराधियों के साथ साथ आने का अपना तरीका था ।

२:९ ***"इसलिये"***-परमेश्वर ने यीशु को उनके त्याग, दीनता और आज्ञाकारिता के लिए ईनाम भी दिया । यह स्वयं मसीह की शिक्षा

१० किया और एक नाम दिया जो हर एक नाम से ऊँचा है । **ताकि** यीशु के नाम के सामने हर एक घुटना झुके चाहे
११ वह स्वर्ग, पृथ्वी या पृथ्वी के नीचे के लोगों का हो । **स्वर्गिक** पिता के सम्मान और प्रशंसा के लिए हर एक व्यक्ति
१२ यह मान ले कि यीशु मसीह ही प्रभु हैं । **इसलिए** मेरे प्यारो, जैसा तुम हमेशा मेरी बात मानते आए हो, मेरी
१३ उपस्थिति में ही नहीं, लेकिन मेरी गैरहाजरी में भी, डरते और कांपते अपनी मुक्ति का काम करो । **क्योंकि**
१४ वह यहोवा ही हैं जिनकी शक्ति तुम्हारे भीतर उनकी भली इच्छा और कामों को प्रोत्साहित करती है। **बिना** तर्क
१५ और शिकायत के हर काम को किया करो । **ताकि** तुम दुष्ट और भ्रष्ट पीढ़ी में जग के स्वामी की निर्दोष और
ईमानदार सन्तान बने रहो और जीवन के वचन को थाम कर इस संसार में रोशनी के समान चमको ।

---

के अनुरूप था । - मत्ती २३:१२ ।

***"बहुत ऊँचा किया"***-प्रेरित २:३३; इफि १:२०,२१; इब्रा. १:३ प्रका ३:२१ । जितना यीशु ने अपने को नम्र किया, उतना किसी ने नहीं किया, कोई इतने ऊपर उठाया भी नहीं गया । यीशु के पास सबसे ऊँचा स्थान था क्योंकि वही इसके लायक थे ।

***"नाम"***-यह सबसे ऊँचा नाम "यीशु" पद १० या "प्रेम" (पद ११) क्या है ? शायद पौलुस का मतलब है ***"प्रभु"*** क्योंकि निंदित किए जाने और मारे जाने से पहले और सम्मानित किए जाने से पहले यीशु नाम दिया गया था । ऐसा लगता है, कि पौलुस उस नाम ***"प्रभु"*** की ओर इशारा कर रहा है जो यीशु के जी उठने के बाद स्वर्ग उठा लिए जाने और सम्मानित किए जाने पर दिया गया था । प्रेरित २:३६ तुलना करें । ***"नाम"*** अधिकार को दिखा सकता है । यूहन्ना १४:१३,१४ देखें । यह शीर्ष की तरह भी इस्तेमाल हो सकता हैं । यशा. ६:६ २:१०,११ ।

***"प्रभु"***-यहाँ पर यूनानी शब्द 'प्रभु' के लिए "कुरियोस" है । यह ओल्ड टैस्टामैन्ट में परमेश्वर के लिए उपयोग हुआ नाम है (लूका २:११) और निर्ममन ३:१४,१५ देखें। उन्हीं के सामने घुटने टेके जाने चाहिए -यशा ४५:२२-२४; मत्ती ४:१०। परमेश्वर पिता ने यह नाम, यीशु को दिया है । परमेश्वर ने सृष्टि में यह एलान कर दिया है कि यीशु जो मनुष्य बने, मौत सही, सृष्टि के मालिक है । वह महान परमेश्वर यहोवा ही हैं, जो मनुष्य बन गए (प्रेरित २:३६; १ कुरि. ८:६; मत्ती २८:१८) । यह भी कि यीशु उपासना के लायक है । दूसरे पद देखें जो दिखाते हैं कि यीशु यहोवा ही है । लूका २:११ ।

***"मान ले"***-वर्तमान में विश्वासी इस बात को खुशी से कहते हैं कि स्वर्ग और पृथ्वी पर यीशु सारे अधिकार के साथ सर्वशक्तिमान स्वामी हैं । चाहे जानते बूझते चाहे बिना इच्छा के, सभी को यह मानना पड़ेगा ।

***"स्वर्गिक पिता के सम्मान"***-जब यीशु को सम्मान दिए जाने के साथ प्रभु स्वीकार किया जाता है, पिता को आदर मिलता है । यूहन्ना ५:२३; १ यूहन्ना २:२३ से तुलना करें ।

२:१२ ***"इसलिए"***-ऊपर दी गयी बातों को प्रकाश में ।

***"मानते आए"***-उसका अर्थ यह था कि उन्होंने परमेश्वर के प्रगट किए गए सत्य को माना (रोमि ६:१७;१पत१:२२) यह बहुत ज़रूरी बात है - याकूब १:२२-२५ । मसीह परमेश्वर के प्रति आज्ञाकारी थे- पद ८। उन्हें भी होना चाहिए चाहे पौलुस उनके साथ हो या न हो। ऐसा ही हमारे साथ होना चाहिए ।

***"काम करो"***-पौलुस यह नहीं कहता है कि मुक्ति के लिए काम करने की ज़रूरत है । वह यह जानता था कि इन्सान की कोशिश और अच्छे कामों से मुक्ति कमाई नहीं जा सकती । - इफि २:८,६, रोमि ३:२८;४:४,५;६:२३; ११:६ । वह कहना यह चाह रहा है कि जो मुक्ति विश्वासियों की जिन्दगी है, उसे कामों में दिखना चाहिए । उनके पास मसीह जैसा रवैया होना चाहिए । और अपने जीवन के हर एक दायरे में उन बातों को लागू करना चाहिए ।

***"डरते और कांपते"***- यशा ६६:२; यिर्म ५:२२ यह काम बहुत ज़रूरी है और इसका अनन्तकालिक असर है । आदर, सम्मान, सतर्कता और समझदारी की ज़रूरत है । परमेश्वर के लिए सम्मान के सम्बन्ध में उत्पत्ति २५:११; अय्यूब २०:२८; भजन ३४:११-१४; १११:१०; नीति १:७ ।

२:१३ ***"यहोवा ..जिनकी शक्ति तुम्हारे भीतर"***-१:६; इफि २:१० देखे इसलिए कि परमेश्वर लोगों के जिन्दगी में बदलाव लाते हैं, यह सच नहीं हैं, कि हमारी कोई जिम्मेदारी नहीं है । इसके उल्टा हमें स्वर्गिक पिता के अपने भीतरी आत्मिक जीवन को बाहर दिखाना है । हम कठपुतली नहीं है । स्वर्गिक पिता हमारे अन्दर काम कर रहे हैं । अच्छे अभिप्राय के साथ वह हमें आगे बढ़ा रहे हैं ।- वह चाहते हैं कि हम मसीह की तरह बनते जाएँ (रोमि ८:२६)।इस गंभीर काम में हमें उनका सहयोग करना चाहिए ।

२:१४-१६ यहाँ दो गम्भीर पाप हैं - सृष्टिकर्ता और उनके दिए हुए अगुवों के खिलाफ शिकायत (निर्ग १६:२-८; गिनती ११:१ आदि) एक दूसरे से झगड़ा (रोमि १४:१-४; १कुरि. ३:३,४) । इसके बजाए विश्वासियों को यीशु मसीह की तरह बनना चाहिए ।

१६,१७ **तब** मैं मसीह के दिन में ख़ुश हो सकूँगा, कि मैं न तो बेकार में दौड़ा था या मेहनत की थी। **हाँ,** यहाँ तक
कि यदि मैं एक पीने वाली भेंट के रूप में तुम्हारे विश्वास से उत्पन्न होनेवाली सेवा और बलिदान पर उण्डेल
१८ भी दिया जाऊँ, तो मैं तुम्हारे साथ आनन्दित होऊँगा। **इस** कारणवश तुम्हें भी खुश होना चाहिए और मेरे साथ
१९ आनन्द मनाना चाहिए। **लेकिन** मैं यीशु मसीह पर भरोसा रखता हूँ कि मैं तिमोथी को तुम्हारे पास जल्दी
२० भेजूँगा, जिससे मैं तुम्हारे बारे में जानकर शांति प्राप्त करूँ। **क्योंकि** मेरे पास उसे छोड़कर समान सोचवाला और
२१ कोई नहीं, जो इमानदारी से तुम्हारे बारे में सोचता हो। **इसलिए** कि हर एक जन यीशु के काम के बारे में नहीं
२२ अपने फायदे की बात सोचता है। **लेकिन** तुम उसके विश्वसनीय बर्ताव को जैसा बेटे का पिता के साथ होता
२३ है, जानते हो कि उसने शुभसंदेश में मेरी सेवा की है। **इसलिए** जैसे ही मुझे अपने बारे में मालूम हो जाता है,
२४,२५ मैं उसे जल्दी भेजना चाहूँगा। **लेकिन** मुझे यीशु में भरोसा है, कि मैं खुद बहुत जल्दी आऊँगा। **मैंने** यह जरूरी
समझा है कि इपफ्रदीतुस को तुम्हारे पास भेजूँ जो काम में मेरा भाई, साथी, फौजी, तुम्हारा संदेशवाहक और
२६ वह है जिसने मेरी ज़रूरतों को पूरा किया है। **उसका** मन भारी था और वह तुम सबको देखने की कामना
२७ करता था। **निःसन्देह** बीमारी के कारण वह मरने पर था। लेकिन स्वर्गिक पिता ने उस पर दया की। न

---

तभी हम ***"निर्दोष ठहरेंगे"*** (१थिस्स २:१०; ५:२३; मत्ती १०:१६; २कुरि.११:२)और बिना किसी खोट के (मत्ती ५:४६)।

***"भ्रष्ट पीढ़ी"***-मत्ती १७:१७; प्रेरित २:४०; गल १:४; इफि २:१-३; ४:१७-१९। हर एक पीढ़ी दुष्ट और और सड़ी हुयी है।

***"रोशनी"*** - मत्ती ५:१४-१६।

***"जीवन के वचन"***-स्वर्गिक पिता आत्मिक जीवन देने के लिए अपना वचन उन लोगों को देते हैं, जो ईमान लाते हैं (याकूब १:१८; १पत १:२३)।

***"बेकार में"***- यदि उनका चाल चलन ऐसा है, जैसा होना चाहिए, तो उस व्यक्ति को जो वहाँ मण्डली को शुरू करने वाला और शिक्षा देनेवाला, यीशु मसीह के दोबारा आने पर गर्व करने का मौका होगा। गल ४:११, १ थिस्सु. २:१९,२० से मिलान करें।

२:१७,१८ ***"पीने वाली भेंट"***-निर्गमन २९:४० देखें। शायद पौलुस मौत और हिसांत्मक मौत की संभावना की बात करता है। (२ तिमो ४:६)

***"विश्वास"***-मसीह में उनके विश्वास ने पौलुस के लिए प्यार की सेवा को उत्पन्न किया था (दूसरों के लिए भी, ४:१४-१६; २ कुरू ८:१-४)। यह कुर्बानी की तरह था। देखें ४:१८; इब्रा १३:१६। यदि मसीह के सेवा के लिए वह मर जाए और परमेश्वर के लिए उण्डेले जानेवाली भेंट बने तो उसे खुशी थी। ऐसा उनके साथ होने पर, उन्हें भी करना चाहिए।

२:१९ ***"तिमोथी"***- १:१, १ कुरि. ४:१७; १६:१०; १ थिस्सु ३:२।

२:२० ***"समान सोचवाला"*** कि उसके मन का वहाँ उस समय कोई नहीं था। मतलब यह कि पौलुस के साथ तिमोथी फिलिप्पी में काम की शुरूआत से ही था। - प्रेरित अध्याय १६।

२:२१ संसार की तो यह हालत है ही, अक्सर मसीहियों की भी।

२:२२ ***"बेटा"*** - आत्मा की बातों में पौलुस तिमोथी को बेटा समझता था। १ तिमो. १:२; तुलना करें, १ कुरि ४:१४,१५; गल. ४:१९, १ थिस्सु २:११।

२:२३,२४ देखें १:२५,२६।

२:२५ ***"भाई"*** आत्मिक बातों में भाई या संगी विश्वासी।

**"काम में मेरा भाई साथी"**-२ तिमो २:३,४; इफि ६:११।

***"मेरी ज़रूरतों"***-४:१८ शायद इपाफ्रीदितुस के पैसे का दान, पौलुस तक लाने के बाद वही जेल में तरह तरह से मदद करता रहा।

***"मरने पर"***-ऐसा लगता है कि पौलुस ने बहुतों को ठीक किया था (प्रेरित १९:११,१२; २८:८९)। उसे तुरंत ठीक नहीं कर पाया था। गलतियों ४:१३; १ तिमोथी ५:२३; २ तिमोथी ४:२० भी देखें। अन्त में पौलुस भी ठीक हो गया था।("स्वर्गिक पिता ने दया की")

***"दुःख"***-इस चिट्ठी का खास विषय खुशी है (१:४)। लेकिन इस दुनिया में अक्सर विश्वासियों की खुशी में उदासी भी मिली रहती है-२ कुरि.६:१०, १पत१:६।

२८ केवल उस पर लेकिन मुझ पर भी, ताकि मुझे दुःख पर दुःख न हो । **इसलिए** मैंने उसे बड़ी तत्परता से भेजा,
२९ ताकि जब तुम उसे फिर से देखो, तुम खुश हो और मुझे अधिक दुख न हो । **उसे** मसीह में बड़े आनन्द के
३० साथ कबूल करो और ऐसे लोगों को इज्ज़त दो । **क्योंकि** मसीह के काम के लिए बिना अपने जीवन की चिन्ता
किए वह मौत के निकट पहुँच गया था, ताकि मेरे लिए की जानेवाली तुम्हारी सेवा की कमी को पूरी कर सके ।

**३** **अन्त** में भाइयो-बहनो, यीशु में खुश रहो । एक ही बात को बार-बार तुम्हे लिखे जाने में मुझे कोई परेशानी नहीं
२ होती है, लेकिन तुम्हारे लिए फ़ायदेमन्द है । **कुत्तों** से सावधान रहो । बुरा काम करनेवालों से सतर्क रहो !
३ काट-कूट करनेवाले से खबरदार । **हम** यहूदी हैं जो आत्मा में सृष्टिकर्ता की आराधना करते हैं और मसीह यीशु
४ में आनन्दित होते हैं, बाहरी रीति-रिवाज़ों पर भरोसा नहीं करते । **हालाँकि** मैं बाहरी रीति-रिवाज़ों में भरोसा

---

२:२८-३० जब पौलुस जेल में था, इपाफ्रुदितुस को मण्डली ने इसलिए भेजा कि पौलुस की मदद करे । लेकिन यीशु के काम के बोझ से वह बीमार पड़ गया और वापस फिलिप्पी की मण्डली में आना चाहा । क्या वहाँ मण्डली यह सोच सकती थी, कि वह अपने काम में नाकामयाब हो गया और पौलुस की ज़रूरत के समय वह उसे छोड़ रहा था । पौलुस उन्हें बताने की कोशिश करता है कि ऐसी बात नहीं है ।

***"इज्ज़त"***-(पद २९) इस पृथ्वी पर दूसरे लोगों की तुलना में ये लोग अधिक सम्माननीय हैं । स्वर्गिक पिता भी ऐसों का आदर करेंगे ।-यूहन्ना १२:२६।

***"बिना अपने जीवन की चिन्ता किऐ"*** - प्रेरित २०:२४; रोमि १६:४; १यूहन्ना ३:१६ ।

३:१ ***"खुश रहो"***-१:४;४:४, अपनी सफलता, अच्छी परिस्थिती और ढेर सी सम्पत्ति में विश्वासियों को खुश नहीं होना चाहिए, लेकिन यीशु में । हब्बक्कूक ३:१७,१८ देखें ।

***"एक ही बात"*** - शायद पौलुस खुश हाने के लिए दोहराए जाने वाले शब्दों की ओर इशारा कर रहा है । या हो सकता है, इसके पहले के पदों में दुष्ट लोगों के बारे में चेतावनी की तरफ- इसके पहले भी शायद उसने ऐसी चेतावनी उन्हें दी हो ।

३:२ यहाँ पौलुस उसी तरह के लोगों के बारे में कहता है, जिन के बारे में दूसरी मण्डलियों को भी चेतावनी दी थी । २ कुरि. ११:१३-१५; गल.१:७१:४; ५:१२ प्रेरित १५:१, २,५ भी देखिए ।

***"कुत्तों"*** - यहूदी लोग कुत्ते को अशुद्ध समझते थे और गैरयहूदियों को कुत्ता समझते थे । पौलुस का कहना यह है कि जिन यहूदियों ने मसीह को नहीं अपनाया और जो मसीहियों को उलझन में डाल रहे थे, वे सच में अशुद्ध पशु थे ।

***"बुरा काम करनेवालों"***- मसीह के शुभसंदेश को बिगाड़ना और मसीही लोगों को सच्चाई से हटाना सबसे बड़ी बुराई है । इसमें तो अनन्तकाल का सवाल है ।

***"काट-कूट"*** -यहाँ वह खतने के रिवाज़ की तरफ इशारा कर रहा है ।उत्पत्ति १७:१०-१४ । कुछ यहूदी, गैरयहूदी मसीहियों पर ज़ोर डाल रहे थे, कि वे इस प्रथा को अपनाएँ । वह व्यंग की भाषा का इस्तेमाल करता है, क्योंकि जो अविश्वासी यहूदी, शुभसंदेश का विरोध करते थे, वे खतने के सच्चे मतलब को अपने जीवन में नहीं दिखा रहे थे । (रोमि २:२५-२९) । इसलिए उनके लिए खतने की रीति एक खाली और अर्थहीन देह को कटवाना मात्र था ।

३:३ ***"हम"***- अर्थात् मसीह को अपनाने वाले चाहे वे यहूदी मत के थे या गैरयहूदी । हालाँकि उनका शारीरिक खतना नहीं हुआ था लेकिन वे सचमुच में ***"खतनेवाले"*** थे - मतलब यह कि पुरानी खतने की रीति जिस भीतरी वास्तविकता को दिखाती थी, वह उनके जीवन में थी । देखें रोमि २:२९; कुलु २:११ । पौलुस अब सच्चे विश्वासियों की परिभाषा देता है ।

***"आत्मा में सृष्टिकर्ता की आराधना"***-यूहन्ना ४:२३,२४।

***"मसीह यीशु में आनंदित"*** - १ कुरि १:१:३०,३१ ।

***"रीति रिवाजों पर भरोसा नहीं"*** -झूठे शिक्षक यह सिखाया करते थे कि शरीर पर की गयी विधि, मानवीय कोशिश और अच्छे काम आदि परमेश्वर को खुश करते हैं, और मुक्ति पाने में मददगार हैं । इस बात को पौलुस पूरी तरह से रद्द कर देता है । वह इन्सानी स्वभाव को अच्छी तरह से जानता था । रोमि ७:१८;८:५-८ । सच्चे मसीही अपने विश्वास को मसीह पर रखते हैं अपने ऊपर नहीं और न अपने कामों पर या दूसरे लोग उनके लिए क्या कर सकते हैं - गल २:१६; ५:२४; इफि २:८,९ ।

३:४-७ यहूदी झूठे शिक्षक अपने ऊपर और धार्मिक कामों पर भरोसा रखते हैं देखें रोमि २:१७-२० । पौलुस अपने पुराने समय की तरफ नज़र डालता है और कहता है कि वह धार्मिक कामों के सम्बन्ध में किसी से कम नहीं था । इसके विपरीत उसने खुद पर और धर्म पर भरोसा रखना छोड़ दिया था । वह सात ऐसी बातें बताता है जो एक अच्छे यहूदी में हुआ करती थीं ।

५ करने का बहाना कर सकता था । **मेरा** खतना आठवें दिन हुआ था । इस्राएल के वंश में बॅन्जामिन गोत्र का
६ और इब्रियों का इब्री हूँ । जहाँ तक यहूदी धर्म की बात है, एक फरीसी । **जोश** की कहें तो मण्डली को सतानेवाला,
७ जहाँ तक नियमशास्त्र के आधार पर धार्मिकता की बात है, निर्दोष । **जो** कुछ मेरे लाभ का था, मैंने मसीह की खातिर
८ सब कुछ को नुकसान समझ लिया । **हाँ,** मैं सचमुच में अपने स्वामी यीशु मसीह को जानने की श्रेष्ठता के सामने
सब कुछ को नुकसान समझता हूँ । जिसके लिए मैंने सब तरह का नुकसान सह लिया और सब वस्तुओं को कूड़ा
९ समझता हूँ, ताकि मैं मसीह को हासिल कर सकूं और उनमें पाया जाऊँ । **नियम** शास्त्र को पालन करने से
मिलनेवाली मेरी अपनी धार्मिकता नहीं, लेकिन जो मसीह में विश्वास के कारण है और जो विश्वास के व्दारा
१० यहोवा से आती है । **ताकि** मैं उन्हें उनके जी उठने की शक्ति और उनकी मृत्यु की समानता में उनके दुखों की

---

***"आठवें दिन"***-लैव्य १२:३ ।

***"इस्राएल"***-स्वर्गिक पिता का चुना हुआ देश (रोमि ९:४,५) ।

***"बेन्जामिन"*** - यहूदी इस गोत्र को काफी आदर के साथ देखते थे । इसी गोत्र के क्षेत्र में यरूशलेम था।

***"इब्रियों का इब्री"***-इसका मतलब था कि वह इब्रानी भाषा जानता था और उनके रीति रिवाज़ों को मानता था।

***"फरीसी"***-वह यहूदियों के कट्टरपंथी समूह का था (मत्ती ३:७ की टिप्पणी देखें)

***"जोश"***-जिसे वह सच समझता था, उसके लिए उसके पास जोश था और उन सबके विपरीत की शिक्षओं से नफरत किया करता था (प्रेरित ८:३; ९:१,२) । इसीलिए यहूदी अगुवे उसका बहुत आदर किया करते थे ।

***"निर्दोष"***-उसका अभिप्राय यह था कि वह बाहर से मूसा द्वारा दिए किसी भी परमेश्वर के किसी नियम को नहीं तोड़ता था । (दूसरे ईश्वरों की उसने पूजा नहीं की, मूर्ति नहीं बनायी, चोरी नहीं की व्यभिचार नहीं किया) । बाहरी सभी बातों को उसने किया था । अपने जीवन में वह कुछ खराबी नहीं देखता था । बाद में उसने जान लिया था कि मन में उसने एक आज्ञा को तोड़ा था - रोमि ७:७-११ । अपने कामों से मुक्ति पाने में यदि कोई बहुत आगे था, तो वह खुद था ।

३:७ उसका यह नया दृष्टिकोण दमिश्क के रास्ते पर उसके अनुभव पर आधारित था - प्रेरित ९:३-६ बातों का सही महत्व क्या है, इसका ज्ञान उसे मिल गया था । जिन बातों को वह आत्मिक लाभ का समझता था, अब वही नुकसान की बातें थीं ।खुद पर भरोसा रखने और घमण्ड करने से वह यीशु से दूर था । अब उसने सब कुछ छोड़ दिया - जन्म वंश, धर्म और सफलता का घमण्ड । जो बातें उसे खुश करती थी।, उसकी आत्मिक आँखों के खुलने से अब हानि की लगने लगीं । वह स्वार्थी इन्सान था । अब मसीह सब कुछ बन गया । यह उन सभी के बारे में सच है, जिनकी आँखे सचमुच में खुल गयी हैं और उन्होंने मसीह को जान लिया है ।

३:८ ***"सब कुछ"***-सिर्फ वे बातें नहीं, जिनके बारे में वह पद ४-६ में बताता है । उसकी दृष्टि में वह सब जो उसके जीवन से जुड़ा था-वह सब जो धर्म देता है आदि सभी अर्थहीन हो गया । तुलना करें मत्ती १०:३९; १६:२४-२६ । मसीह को पहचानना एक बड़ा ईनाम था, जिसके सामने सब कुछ कूड़ा था । यूहन्ना १७:३; और २ कुरि ४:६ से मिलाप करें । पौलुस यीशु के साथ व्यक्तिगत सहभागिता की बात करता है । इसके साम्हने वह सब कुछ को कचरे का ढेर समझता है । यह खेद की बात है कि पौलुस जिन बातों को कचरा समझता था, उन्हीं के लिए लोग जीवित हैं ।

***"सब तरह का नुकसान"***-लूका १४:३३ । यदि एक व्यक्ति मसीह को प्राप्त करता है और दुनिया का सब कुछ खो देता है, यह हानि की बात नहीं, उसको दुखी नहीं होना चाहिए । क्योंकि मसीह में बुद्धि, धार्मिकता, पवित्रता, मुक्ति और हर तरह की आत्मिक आशीष हैं-१ कुरि. १:३०; इफि १:३ । एक सच्चा विश्वासी बनने में क्या कीमत देनी पड़ती है ? जो कुछ उसके पास है । एक वास्तविक मसीही बनने में इन्सान को क्या मिलता है ? जो कुछ स्वर्गिक पिता का है-१ कुरि ३:२१; रोमि ८:१७; २ कुरि ६:१०; ८:९ ।

३:९ ***"मेरी अपनी धार्मिकता"***-पद ६; रोमि १०:३ । इसी मात्र धार्मिकता के लिए लोग कोशिश करते हैं । लेकिन इन्साफ के समय सृष्टिकर्ता के सामने खड़े होने के समय यह किसी फायदे की नहीं । लूका १८:९-१४ यशा ६४:६ से तुलना करें ।

***"विश्वास के कारण"*** - रोमि ३:२१-२६;२८; ५:१; १०:१०; २कुरि ५:२१; गल.२:१६।

३:१० ***"ताकि मैं...सहभागिता जानूँ"*** -पद ८ पौलुस यह चाहता था, कि यीशु बेहतर तरीके से जानें । वह एक ऐसे ज्ञान की बात करता है, जो व्यक्तिगत अनुभव से मिलता है न कि वह दिमागी ज्ञान जो उनके बारे में पढ़ने से मिलता है । तुलना करें २ पत ३:१८ ।

***"जी उठने की शक्ति"*** -पौलुस इस शक्ति को थोड़ा बहुत जानता था । यह उस ज्ञान से ज्यादा है जो अधिकांश लोगों को है (कुलु १:२९) । किन्तु वह इससे भी ज़्यादा अनुभव करना चाहता था ।तुलना कीजिए इफि १:१९,२०; ३:२०;रोमि ६:४।

११,१२ सहभागिता जानूँ । **ताकि** किसी तरह से मरे हुओं में से जी उठने की अवस्था तक पहुँच सकूँ । **यह** नहीं कि
मैंने सब कुछ हासिल कर लिया है या सिध्द बनाया जा चुका हूँ । लेकिन मैं आगे बढ़ता जाता हूँ ताकि मैं वह
१३ हासिल कर सकूँ, जिसके लिए मसीह यीशु ने मुझे चुना है । **भाईयो-बहनो,** मैं यह नहीं समझता कि मैं यह
हासिल कर चुका हूँ । लेकिन एक काम करता हूँ: पुरानी बातों को भूलकर आगे की बातों की ओर चला जा

---

***"उनके दुखों की सहभागिता"*** - १:२६; कुलु २:२४; रोमि ८:१७ । दूसरे बहुत से लोगों से अधिक उसने दुख सहा था - २ कुरि ११:२३-२८ । वह इससे अधिक चाह रहा था । वह यह जानता था कि यीशु की देह (मण्डली) में गहरी संगति लेने के लिए उनके दुखों में हिस्सेदार होना ज़रूरी है । वह यह भी नहीं चाह रहा था कि किसी तरह इससे बचा जा सकता है (जैसा कुछ लोग सोचते हैं) । कुलु १:२४ देखिए । पौलुस ने जीवन में मसीह को एक बार दुःख दिया था, प्रेरित ६:४,५ । वह मसीह के क्लेशों में भागीदार बनना चाहता था, जो तब तक है, जब तक उनके लोग इस संसार में है । यीशु मसीह के जी उठने की शक्ति में हिस्सेदार होने का मतलब होता है, उनके दुखों में भी भाग लेना । यीशु की तकलीफ़ों में भाग लेने का मतलब है उनकी शान्ति और आराम में भी भाग लेना (२ कुरि १:५-७; यूहन्ना १६:३३) और इस पृथ्वी के बाद जो कुछ उनका है, उसे भी हासिल करना (रोमि ८:१७) ।

***"उनकी मृत्यु की समानता"*** - २:८ मसीह की मौत का मतलब था पूरी दीनता, बात मानना और यहोवा की इच्छा पर अपने आप को छोड़ देना । इस अनुभव को पौलुस अपने आप में और अधिक चाहता था। तुलना करें २ कुरि ४:१०-१२; गल २:२० ।

३:११ ***"मरे हुओं में से जी उठने की अवस्था"*** -इसका मतलब है कुछ जिलाए जाते हैं, और कुछ नहीं । दूसरे शब्दों में यहाँ वह विश्वासियों के जिलाए जाने की बात कह रहा है ।(१ कुरि १५:५०-५४; १थिस्सु ४:१४-१७; प्रका २०:५) । लेकिन क्या इस पुनरूत्थान को "हासिल" किया जा सकता है ? क्या पौलुस को इस बारे में कोई शक था ? कोई कारण नहीं है कि हम शक करें, कि ऐसा था - ३:२१; १:६; रोमि ५:८,६; ८:३८,३६; २ कुरि. ५:१,२; २ तिमो ४:१८ । किन्तु उसे यह मालूम था, कि विश्वासियों का जी उठना विश्वास के जीवन के अन्त में था और यह कि आवश्यक था कि मसीह का चुनाव किया जाए, लगातार किया जाए और अन्त तक विश्वास करते रहें । कुलु १:२३; इब्रा ३:६,१४ । यीशु के ज्ञान और सहभागिता में बढ़ते जाने, उनकी तरह होते जाने से यह निश्चित हुआ, कि यह उसके जीवन की दिशा होगी । इस तरह के विश्वास में बने रहना इस इब्रानियों की पत्री का एक बड़ा विषय है । (यह बाइबल का भी एक बड़ा विषय है) ।

३:१२ ***"यह न ही .....हासिल कर लिया है"*** - पद १० वह मसीह की सामर्थ और सहभागिता के विषय कुछ जानता था । परन्तु उसे पूरी तरह अनुभव कर पाना संभव नहीं था ।

***"सिद्ध"*** -यह उसका लक्ष्य तो था, लेकिन अब तक अनुभव नहीं बना था । मत्ती ५:४८ में 'सिद्ध' पर नोट्स देखें। फिलिप्पी में शायद कुछ ऐसे लोग थे, जो किसी तरह की सिद्धता की कोशिश कर रहे थे । और दूसरे लोगों को नीचा समझ रहे थे (पौलुस की चिट्ठियों में वह सब कुछ हुआ करता था, जो वहाँ के लोगों की आत्मिक ज़रूरत हुआ करती थी)। अगर वहाँ सिद्धता की बात करने वाले लोग थे, तो वह उनसे यह कहना चाहता था, कि वह खुद अभी तक सिद्ध नहीं है ।) यदि महान प्रेरित पौलुस सिद्ध नहीं बन पाया था, हमें जान लेना चाहिए कि हम भी नहीं बने हैं ।

**"आगे बढ़ता जाता हूँ"** -इब्रा. ६:१,११,१२ ।

***"हासिल कर सकूं"*** -वह वही बनना चाहता था जो मसीह ने उसे बनाने के लिए बुलाया था । वह इतना पवित्र, दीन आज्ञाकारी, प्रेमी और फलदायक बनना चाहता था, जितना एक विश्वासी के लिए पृथ्वी पर संभव था। वह अपनी आत्मिक हालत से खुश नहीं था । पुरानी जिन सफलताओं को उसने हासिल किया था, उनसे भी वह सन्तुष्ट नहीं था । वह मसीह को और अधिक चाहता था ।

३:१३ ***"एक काम करता हूं"*** - उसका हृदय बँटा हुआ नहीं था, उसका मन आत्मिक बातों के लिए दुचित्ता नहीं था । (याकूब १:८ से तुलना करें) ।

***"भूलकर"*** -इसका मतलब स्मृति से बिल्कुल बाहर निकाल देना नहीं है ।ऐसा शायद ही हमारे लिए हो सकता है । पौलुस का कहना है कि वह जानबूझकर पुरानी बातों को भूलता जाता था । उसके लिए आनेवाली/होनेवाली बातें ज़्यादा ज़रूरी थी । पुरानी असफलताओं और सफलताओं को छोड़कर वह आगे बढ़ते रहना चाहता था । वह नहीं चाहता था कि उसकी पुरानी असफलता उसे मायूस करे और सफलता आलसी बना दे ।

***"आगे की..ओर चला जा रहा"*** -जिस तरह से एक दौड़ने वाला बहुत कोशिश और मेहनत करता है उसी बात को यह शब्द दिखाता है।

१४ रहा हूँ । **मैं** मसीह यीशु में स्वर्गिक पिता के ऊपरी बुलाहट के ईनाम के लिए निशाने की तरफ बढ़ता जाता
१५ हूँ । **इसलिए** हम में जो अच्छी समझदारी रखते हैं, यही मन रखें । यदि किसी विषय में तुम्हारा सोचना कुछ
१६ और है, तो सृजनहार उसे तुम पर प्रगट करेंगे । **किसी** भी हालत में, हमने जिस माप से हासिल किया है, उसी
१७ नियम से हम जीवन जिएँ और एक ही मन के रहें । **भाइयो-बहनो,** हम तुम्हारे लिए एक नमूना हैं इसलिए
१८ दूसरों के साथ मिलकर मेरी तरह जीवन जियो और उन्हें भी देखते रहो जो ऐसा करते हैं । **बहुत** से लोग
मसीह के क्रूस के दुश्मन की तरह जीवन जी रहे हैं । अक्सर मैंने उनके बारे में तुम्हें बताया है और अभी
१९ रोते हुए कहता हूँ । **उनका** अन्त बर्बादी है । उनका ईश्वर उनका पेट है । अपनी शर्म पर उन्हें घमण्ड है ।
२० उनका सारा ध्यान पृथ्वी की बातों पर लगा हुआ है । **लेकिन** हमारी नागरिकता स्वर्ग की है । वहीं से हमें प्रभु

---

३:१४ ***"निशाने"*** -१ कुरि. ९:२४-२७; प्रेरित २०:२४ देखिए ।

***"ईनाम"*** -वह ईनाम क्या है, नहीं बताता है । वह जानता है कि यह एक बड़ा ईनाम होगा -जितना सृष्टिकर्ता बना सकते हैं - ईनाम (पुरस्कार) के बारे में मत्ती ५:१२; १०:४१,४२; १६:२७; १कुरि.३:८,१४; इब्रा.१०:२५; प्रका ११:१८; २२:१२ में देखें ।

***"निशाने की तरफ बढ़ता जाता"*** - पद २०; इब्रा ३:१

३:१६ ***"परिपक्व"*** या ***"सिद्ध"*** - १कुरि २:६; इफि. १:१३-१५; कुलु १:२८; ४:१२; इब्रा ५:१४; ६:१ । सिद्धता का मतलब पौलुस की निगाह में निर्दोषता या बिना खोट के होना नहीं था-पद १२ । लेकिन उसे मालूम था कि वह एक समझदार विश्वासी था । मसीह में आत्मिक तरीके से बढ़ चुका था । सिद्धता के बारे में जो उसके विचार थे, वही सभी मसीह के शिष्यों के होने चाहिए । पौलुस यह जानता था कि ऊपर के पदों में 'सिद्धता' के विषय उसकी शिक्षा, स्वर्गिक पिता की तरफ से ज्ञान था और वह चाहता था कि वह उसकी आँखों को खोलें ताकि वे सच्चाई को जान सकें (१:९,१०) । उसे मालूम था कि उसकी बिनती सुनी जाएगी ।

३:१६ इसी ज्ञान को नींव बनाकर शिष्यों को अपना जीवन जीना चाहिए यदि वे ऐसा करेंगे, तो सर्वशक्तिमान प्रभु सच्चाई को जानने के लिए उनको समझा देंगे ।

३:१७ ***"नमूना"*** - प्रेरित २०:१८ में नोट्स और संदर्भों को देखें । पौलुस ने सिर्फ यह नहीं दिखाया कि उनका चालचलन कैसा हो, उसने वैसा करके दिखाया ।

***"देखते रहो"*** - पद २; रोमि १६:१७ ।

३:१८ ***"रोते हुए"*** - प्रेरित २०:३१ । पौलुस रोता था । क्योंकि बहुत से लोग जो यह दावा करते थे कि उनक विश्वास मसीह में है, वे अपने कर्मों द्वारा सिद्ध कर देते थे कि वे वे मसीह के शत्रु हैं । ऐसा लगता है कि जब भी एक स्थानीय कलीसिया शुरू होती थी, क्रूस के ऐसे दुश्मन जल्द ही उजागर हो जाते थे - प्रेरित २०:२९,३०; रोमि १६:१७; २ कुरि ११:१३-१५; गलतियों १:७; ६:१२; कुलु २:८,१६;२तिमो. ३:१-७;४:१-५ । वे धार्मिकता तो दिखाते थे परंतु उसकी सामर्थ का इन्कार करते थे ।-१ तिमोथी ३:५ ।

३:१९ ***"बर्बादी"*** - मत्ती ७:१३; यूहन्ना १७:१२; रोमि ६:२२; २थिस्सु १:९ ।

***"पेट"***-यहाँ पर इस्तेमाल हुआ शब्द शायद शरीर (देह के उस जीवन के बारे में है जो आत्मिक जीवन के बिलकुल उल्टा है) रोमि ७:५ । कुछ लोग इसी ईश्वर (देह की इच्छाओं से चलना) की उपासना करते हैं । वे झूठ बोलने, धोखा देने और चुराने में पीछे नहीं हटते । वे कहते तो हैं, कि मसीह के पैरोकार हैं, लेकिन अपनी अभिलाषाओं के हिसाब से जीते हैं- रोमि १६:१८; १ तिमो ६:५; २ पत २:३ ।वे हमेशा अपने पेट को भरना चाहते हैं, परमेश्वर की आत्मा से भरपूरी का उन्हें कोई लेना देना नहीं ।

***"शर्म"*** - अपनी भयानक आत्मिक अज्ञानता में वे उन बातों पर घमण्ड करते हैं, जिनमें उन्हें शर्म आनी चाहिए । तुलना कीजिए १ कुरि ५:१,२,६; २ पत.२:१८; यहूदा १६; भजन १०:३; ५२:१ । जिस सम्मान को पौलुस कचरा कहता है, वही उनके पास है ।

***"पृथ्वी की बातों"***-रोमि ८:५-८ आत्मिक बातों के लिए उनके भीतर इच्छा नहीं है, सिर्फ दुनियाँ की बातों के लिए है चाहे वे जितना भी उन सब के बारे में कहे या संदेश दे । धन, सम्पत्ति, आदर, यश, देह की इच्छाओं का पूरा होना-इन्हीं से उन्हें लगाव है और इन्हीं के पीछे हैं ।

३:२० यीशु के माननेवाले इस दुनिया में है, लेकिन वे इस दुनिया के नहीं हैं ।-यूहन्ना १७:६,११,१४,१५ । उनका शहर और देश ऊपर है - इब्रा ११:१०,१६; १३:१४; गल ४:२६ । वे स्वर्ग के हैं । उनकी अशाएँ और इच्छाएँ वहीं पर टिकी हुयी हैं । यहोवा उन लोगों के राजा हैं । वे अपने मुक्तिदाता के आने के इन्तज़ार में हैं - प्रेरित १:११; १ थिस्सु ४:१४-१८; इब्रा ९:२८ ।

२१ यीशु मसीह के आने का इन्तज़ार है । **वह** हमारी क्षणभंगुर देह को बदलेंगे, ताकि यह उनकी तेज भरी देह के
समान हो जाए । ऐसा यीशु अपनी उस शक्ति से करेंगे, जो उन्हें सब वस्तुओं को अपने वश में करने के योग्य
४ बनाती है । **इसलिए** मेरे प्यारे भाइयो-बहनो, जिनमें मेरा जी लगा रहता है और जो मेरा आनन्द और मुकुट
२ हो, यीशु में स्थिर रहो । **मैं** यूओदियो और सुन्तुखे से यह बिनती करता हूँ कि वे मसीह में एक मन की बनी
३ रहें । **मेरे** सच्चे साथी, मैं यह बिनती करता हूँ कि तुम इन स्त्रियों की सहायता करो, जिन्होंने शुभसंदेश दिए
जाने के काम में मेरे साथ मेहनत की । जिस प्रकार से क्लॅमन्ट और दूसरे कार्यकर्ताओं ने, जिनके नाम जीवन
४,५ की पुस्तक में हैं, मेहनत की । **यीशु** में सदा खुश रहो, मैं फिर कहता हूँ, खुश रहा करो । **तुम्हारी** सज्जनता
६ को सभी लोग देख सकें । यीशु अचानक आएंगे । **किसी** भी प्रकार की चिन्ता न किया करो, लेकिन हर एक
७ परिस्थिति में तुम्हारी बिनतियाँ धन्यवाद के साथ स्वर्गिक पिता के सामने लायी जाएं । **तब** स्वर्गिक पिता की शान्ति,

---

३:२१ ***"बदलेंगे"*** - १ कुरि १५:५०-५३ ।

***"तेज से भरी देह"*** - १ कुरि १५:४२-४४,४६; १यूहन्ना ३:२; रोमि ८:२३-२५ ।

***"योग्य"*** - १ कुरि १५:२४,२५; इब्रा २:४; इफि १:६ ।

४:१ ***"जी लगा रहता"*** - १:७,८

***"आनंद और मुकुट"***- २:१६; १ थिस्स २:१६- उस समय वे उसकी खुशी थे, लेकिन बाद में खुशी और ताज दोनों ।

***"स्थिर रहो"***-इफि ६:११,१३,१४; आदि ।

४:२ हमें नहीं मालूम कि ये दोनों स्त्रियाँ कौन थीं, लेकिन उनके झगड़ों से पौलुस परेशान था । उसने गुहार लगायी कि झगड़ना बन्द करें । तुलना करें २:१२ । वह यह अच्छी तरह से जानता था, कि झगड़े-फसाद शिष्यों में कैसा तहलका मचा सकते है । १ कुरि. १:१०-१३; ३:३,४ ।

४:३ ***"सच्चे साथी"*** - नहीं मालूम कि यह कौन व्यक्ति था । ऐसा लगता है कि पौलुस ने उस पर भरोसा किया, कि वह झगडा निबटा सकता है ।

***"जीवन की पुस्तक"***-निर्गमन ३२:३२; भजन ६९:२८; १३९:१६; लूका १०:२०; प्रका ३:५; २०:१२-१५। पौलुस कैसे जानता था कि उनके नाम जीवन की पुस्तक में लिखे हैं ? उनके कामों को देखकर और बातों को सुनने से । १ थिस्सु १:४-१० से मिलान करें ।

४:४ ३:१ और नहे ८:१० देखिए ।

४:५ ***"सज्जनता"*** २ कुरि १०:१; १तिमो ३:३; याकूब ३:१७ ।

***"यीशु अचानक आएंगे"***- इसका मतलब हो सकता है कि अभी वह यीशु के माननेवालों के नज़दीक हैं (भजन १४५:१८;मत्ती २८:२०; इब्रा १३:५)

४:६ यहाँ हमारे लिए स्वर्गिक पिता का रास्ता है । जीवन की सभी हालतों में मन के अन्दर की शान्ति (यीशु की इच्छा के खिलाफ जाने में उनकी शान्ति लोप हो जाती है)

***"चिंता"***-चिन्ता यह दिखाती है कि यहोवा पर भरोसा और उनकी सच्चाई की सही समझ कमज़ोर है । फिक्र और ईमान, तेल और पानी की तरह है । वे कभी एक नहीं होते । मत्ती ६:२५-३४ देखिए ।

***"किसी भी प्रकार की"***-हमें बहुत कठिन और डरा देने वाली हालत में भी चिन्तित नहीं होना चाहिए । यदि हम मसीह के शिष्य हैं, यहोवा हमारे भीतर हैं, पास में हैं, चारों तरफ हैं, हमारे समझने के साथ भी हैं । वह हमारे पिता हैं जो हमारी योग्यता से कहीं अधिक प्यार करते हैं । हमारे लिए असीमित शक्ति का इस्तेमाल करते हैं । हमारी ज़िम्मेदारी यह है कि हम अपनी चिन्ताएँ भरोसे के साथ उन पर डाल दें और उनके वायदों पर तकिया करें-१ पत ५:८ तरह की प्रार्थनाएँ हैं । उनमें से कुछ के बारे में पौलुस यहाँ बताता है ।

***"धन्यवाद के साथ"***- उत्पत्ति १८:३२; लैव्य ७:१२,१३; भजन ७:१७; ५०:१४,१५; इफि ६:१८; १थिस्सु ५:१७,१८; इब्रा १३:१५; क्या हम इस बात की कल्पना कर सकते हैं, कि बिना धन्यवाद की प्रार्थना किए दूसरी प्रार्थनाएँ कामयाब होंगे । क्या धन्यवाद नहीं देने से हमारे भीततर में चिन्ताएँ नहीं आती है ?

***"बिनतियां ... स्वर्गिक पिता के सामने"***- लोगों से नहीं, देखिए मत्ती ७:११ ।

४:७ परमेश्वर की शान्ति का मतलब वह शान्ति जो वह देते हैं । यह उनकी अपनी शक्ति के समान है । यहोवा किसी बात के लिए चिन्तित नहीं होते हैं । यहोवा पिता के लिए दिया गया जीवन और विश्वास, हमारे जीवन में शान्ति पैदा करता है ।-यशा २६:३ । यूहन्ना १४:१,२७;१६:३३; कुलु ३:१५ । यह शान्ति उस 'आराम' की तरह है, जिसका वायदा मत्ती ११:२८-३० में

८ जिसे समझा नहीं जा सकता, तुम्हारे दिल और मन को मसीह यीशु में संभालेगी। **अन्त** में भाईयो-बहनो, जो कुछ
सच है, जिन बातों में ईमानदारी है, इन्साफ है, जो बातें शुध्द, प्यारी और सुनने में अच्छी हैं, उन पर ध्यान
९ लगाओ। यदि कोई भली और तारीफ के लायक बात है, उसी पर मनन करो। **जो** कुछ तुमने मुझसे सीखा,
१० अपनाया, सुना और मुझमें देखा है, वही करो और शान्ति के परमेश्वर तुम्हारे साथ रहेंगे। **मैं** यीशु में बहुत
खुश हूँ कि अब तुम मुझमें फिर से दिलचिस्पी दिखाने लगे हो। इसके पहले तुम्हें मेरा ख्याल तो था लेकिन
११ मौका नहीं मिला था। **यह** नहीं कि मैं तुम्हें अपनी ज़रूरतें बतला रहा हूँ। लेकिन मैंने सीख लिया है, कि जैसी
१२ हालत में हूँ, सन्तोष रखूँ। **कमी** हो या बहुतायत, दोनों ही के अनुभव मेरे पास हैं। हर जगह और हर बात
में मुझे यह सिखाया गया है, कि भरपेट कैसे रहूँ और भूख कैसे सहन करूँ। भरपूरी का आनन्द कैसे लूँ और
१३ ज़रूरत न पूरी होने की पीड़ा को कैसे सहूँ। **यीशु** जो मुझे शक्ति देते हैं, उनकी मदद से मैं सब कुछ कर
१४,१५ सकता हूँ। **फिर** मैं खुश हूँ कि तुम मेरी मुसीबत में हिस्सेदार बने। **तुम** फिलिप्पी की मण्डली के लोग, तुम्हें
यह मालूम है कि शुभसंदेश की शुरूआत में, जब मैं मकिदुनिया छोड़ने पर था, देने और लेने के बारे में तुम
१६ लोगों को छोड़कर किसी और ने मेरी मदद नहीं की थी। **जब** मैं थिस्सुलुनीके में था, तब भी बार-बार तुमने
१७ मेरी ज़रूरतों को पूरा किया था। **मैं** यह इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि मैं ईनाम का भूखा हूँ। मैं यह चाहता
१८ हूँ कि तुम्हारे खाते में बहुतायत से जमा हो। **मेरे** पास अधिकाई से सब कुछ है। इपफ्रदीतुस के हाथ से जो

---

किया गया है। यीशु के लोगों को ऐसी हालत में शान्ति मिल सकती है जो दूसरे लोग कभी हासिल नहीं कर सकते। वे यह भी नहीं जान सकते कि उन्हें यह कैसे मिलती है। उनके मन और दिमाग के दरवाजों पर यह शान्ति एक सुरक्षाकर्मी की तरह रहती है। तभी हमारा दिल हर तरह की फिक्रों और चिन्ताओं से मुक्त रह सकेगा।

४:८ ***"उसी पर मनन करो"***-हमारे आत्मिक जीवन का हमारे दिमाग या सोचने विचारने का बड़ा सम्बन्ध है। उन्हीं पर हमारे काम निर्भर होते हैं। उनका लगातार नवीनीकरण ज़रूरी है -१२२:२। उनके ख्याल आसमानी बातों पर होने चाहिए। देखें भजन १:१,२। बुरी बातें, बुनियादी बातें हमारे बुरे स्वभाव को आकर्षित करती हैं। गल ५:१६,१७। यदि हम ऐसी बातों पर अपना सोच विचार रखेंगे, तो हमें उनकी इच्छा होगी। यदि हामरे विचार हमेशा सच्चाी, पवित्र और अच्छी बातों पर टिके रहेंगे तो हम आसानी से बुरी इच्छाओं को रद्द कर पांएगे। हमें सावधान होना चाहिए कि हम क्या पढ़ते हैं, क्या देखते हैं, कैसा संगीत सुनते हैं या कैसी कल्पनाएँ करते हैं जो हम यीशु के लोगों के लायक नहीं है, तो इसका असर हमारे बर्ताव और कामों पर होगा।

***"शान्ति के परमेश्वर"***-रोमि १५:३३; १६:२०; १थिस्सु ५:२३; इब्रा १३:२०। यदि हमारे पास शान्ति के पिता हैं, तभी हमें परमेश्वरीय शान्ति मिल सकती हैं - पद १७।

४:१० ***"खुश"*** - १:४,५ वह खुद के लिए इसलिए खुश नहीं था कि उसे कुछ मिला। वह खुश था, यह अपने आप में स्वर्गिक पिता की तरफ से एक ईनाम था-पद १७। जो लोग हमें देते हैं, उनके तरफ हमारा यही रवैया होना चाहिए।

४:११,१२ १ तिमो ६:६-८, इब्रा १३:५; लूका ३:१४। इस पृथ्वी पर सचमुच में अमीर कौन है ? वही जो अपने पास जो है, उसमें प्रसन्न है। सन्तोष करना, पौलुस ने सीखा था, वह स्वभाव से ऐसा नहीं था। सन्तोष और परमेश्वर की शान्ति के साथ-साथ उनके संग रहता है जो भरोसा रखनेवालों के मन को सुरक्षा देती है। कुछ स्थितियों, जिनमें पौलुस ने रहना सीखा, वे २ कुरि ४:८,९, ६:४-१० और ११:२३-२७ में हैं। वह यह चिट्ठी किसी महल से, लेकिन जेल में से नहीं लिखता है-१:१२,१३। कुछ मसीही लोगों के मन में धन, सम्पत्ति और शान शौकत की चीज़ों को बटोरने की इच्छा है, जो वचन के खिलाफ हैं और हमारे भीतर के नए जीवन के लिए खतरनाक हैं।

४:१३ ***"सब कुछ"***-वह महसूस करता था, कि किसी भी परिस्थिति, काम और चुनौती का सामना वह शान से कर सकता था।
***"उनकी (यीशु) सहायता से"*** -रोमि ८:३७; २ कुरि २:१४; ३:४-६; इफि १:१९;३:२० पौलुस का भरोसा अपनी ताकत में नहीं था, न ही आत्म संयम और अनुशासन पर (हालाँकि इन सब का अभ्यास उसको था - १कुरि ९:२५-२७)।
***"शक्ति देते है"***-भजन ७३:२६; यशा ४०:३१; २ कुरि १२:८,१०। हर एक मसीह के शिष्य को वह सब सीखना चाहिए, जो पौलुस ने सीखा था। विश्वासी को यह नहीं सोचना चाहिए कि उससे कुछ हो नहीं सकता।

४:१४-१६ देखें १:५ देने के बारे में वे एक नमूना वाली कलीसिया थी। २ कुरि ८:१-५ भी देखें।
***"थिस्सुलुनीकिया"*** - प्रेरित १७:१।

४:१७ पद १०

४:१८ ***"खुशबूदार"***-यूहन्ना १२:३; मत्ती २६:१०; लैव्य १:९;२:२; आदि से तुलना कीजिए।
***"कुर्बानी"***-२:१७; इब्रा १३:१६।

४:१९ उन्होंने पौलुस की ज़रूरतों को पूरा किया था - पद १८। ऐसा उन्होंने अपनी कमी में किया था। - २कुरि ८:२। स्वर्गिक

कुछ तुमने भेजा, उसको पाकर मैं भरा-पूरा हूँ। वे चीजें खुशबूदार इत्र, स्वर्गिक पिता को खुश करनेवाली और
१६ ग्रहणयोग्य कुर्बानी हैं। **मेरे** स्वर्गिक पिता, मसीह यीशु अपनी महिमा में धन-सम्पत्ति के अनुसार ही तुम्हारी
२० ज़रूरतों को पूरा करें। **अब** हमारे यहोवा पिता को बड़ाई और आदर सदा काल तक मिलता रहे। ऐसा अवश्य
२१ हो। **मसीह** के प्रत्येक पवित्र जन को नमस्कार। मेरे साथ में जो भाई लोग हैं, वे भी इसमें शामिल हैं।
२२,२३ **सभी** पवित्र लोग तुम सभी को और विशेषकर कैसर के परिवार के लोगों को सलाम कहते है। **स्वामी** यीशु
मसीह की कृपा तुम सभी पर बनी रहे। ऐसा ही हो।

---

पिता अपनी अधिकाई के खज़ाने से उनकी जरूरतें पूरी करनेवाले थे। यहाँ एक सूत्र या सिद्धांत है जिसका अभ्यास हम सभी को करना चाहिए। देखें लूका ६:३८; २कुरि ६:६-८।

***"तुम्हारी जरूरतों"***- वह सब नहीं, जो हम चाहते हैं, लेकिन वह सब जिसकी हमें ज़रूरत होती है। मत्ती ६:३३;७:६-११; भजन २३:१; ३७:२५। यहोवा हमारी आत्मिक ज़रूरतों को भी पूरा करते हैं - पद २३; इफि १:३; ३:१६-२०।

***"धन-सम्पत्ति"***- रोमि २:४;६:२३;इफि १:७,१८; २:७ ३:८,१६। क्या यीशु के माननेवालों को बेचैन होना चाहिए, कि सृष्टिकर्ता उनकी ज़रूरतों को पूरा कर पाएंगे या नहीं ? बिल्कुल नहीं-पद ६; मत्ती ६:२६। यदि वह ज़रूरी है, कि लोगों के सामने हाथ फैलाया जाए, परमेश्वर लोगों के लिए खुद कर सकते हैं। वह लोगों के मनों को उभार सकते हैं, कि वे विश्वासियों की मदद करें। हमें यह चाहिए कि सबकुछ उनके सुपुर्द करें और उनके ऊपर छोड़ दें। हमें यह कल्पना भी नहीं करनी चाहिए कि प्रभु कुछ कर नहीं सकते या नहीं करेंगे।

गिनती ११:२३ देखें।

४:२० रोमि १६:२७ आदि

४:२१ ***"सन्त"*** - रोमि १:७

४:२२ ***"कैसर का घराना"*** - १:१३। शायद वह उन लोगों की ओर इशारा कर रहा है जो राजघराने या सरकार में सेवारत हैं।

***"शर्तहीन कृपा"*** - रोमि १:७; १६:२०। इसी तरह से हमारी ज़रूरते पूरी होती हैं।